जनपदीय संस्कार–गीतों में 'स्त्री' की सार्वभौम– मनःस्थिति

16

डॉ. अनीता जैन*

लोकगीत लोकमानस की सहज अभिव्यक्ति है। ये ऐसे गीतात्मक–मंत्र हैं जिनमें क्षेत्रीय मॉटी की मॅहक, जीवन के सुख–दुख, परिवर्तन और सुविधाओं–असुविधाओं की संवेदनाऍं सभी कुछ समाहित रहती हैं। लोकगीत चाहें कहीं के हों, उनकी भाषा, बोली–बानी, लय तथा राग कोई भी हो, उनकी आत्मा एक है संवेदनाओं में कहीं भी अंतर दृष्टिगोचर नहीं होता है। इसका एक मात्र कारण यह है कि विश्व भर की मानवीय मनोवृत्तियॉ समान होती हैं। प्रेम, वियोग, राग, द्वेष, सिहरन, तड़पन, उल्लास, विशाद की स्थिति मानव–मात्र में एक जैसी है। इसलिये लोक गीतों की संवेदनाऍं सर्वत्र एक जैसी ही देखने को मिलती हैं।

वीर गाथा काल की एक नवविवाहिता युद्ध में मारे गये अपने पति की मृत्यु की सूचना पाकर अंतरमन से दुखित होती हुई भी अपनी सहेलियों के बीच यह कहती हुई दिखाई देती है कि –

"भल्ला हुआ जो मारिया, बहिणी म्हारा कन्तु"।
"लज्जे जुंग संवयंसियउ जौ भग्गा घर अन्तु"।।

हे बहन। अच्छा हुआ कि हमारा पति युद्ध में वीर गति को प्राप्त हो गया है। यदि वह भागकर घर आ गया होता तो समवयस्क सहेलियों के बीच मुझे लज्जित होना पड़ता। गीत का संदेश स्पष्ट है। उक्त नवविवाहिता विधवापन का कटु अभिशाप इसलिये पीकर चुपचाप रह जाती है कि उसकी कोई सहेली कभी तानाकशी करती हुई उससे यह न कह सके कि तुम्हारा पति तो भगोड़ा है।

एक प्रोशित पतिका का पति परदेश से बहुत दिनों के बाद घर आया हुआ है किन्तु सास–ससुर, देवर–जेठ अथवा ननद, भाभियों से भरे घर में उसे पति से दो घड़ी एकांत में बैठकर बात करने का अवसर प्राप्त नहीं हो पाता। ऐसे ही में एक दिन घर में आग लग जाती है। सभी लोग घड़े कलसो में पानी भर–भरकर एक दूसरे को आग बुझाने हेतु थमा रहे हैं वह नवविवाहिता भी घड़ें में पानी भरकर पति के हाथों में पकड़ाती है। बार–बार घड़ा थमाते हुये उसके हाथ का स्पर्ष पति के हाथों से होता है उस आत्म सुख की अनुभूति की एक झलक निम्नांकित पंक्तियों में दर्शनीय है।

"आग लगो घर जरिगा, बड़ भल कीन।

*सहायक प्राध्यापिका, जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भिण्ड म.प्र.

"पिय के हाथ घरिलवा, भरि–भरि दीन"।।

पंक्तियाँ पढ़कर कोई भी संवेदनशील व्यक्ति इसमें अंतर्निहित संवेदना से अभिभूत हुये बिना नहीं रह सकता। और यदि वह व्यक्ति दैव योग से कोई स्त्री हुई तो उसकी वेदनानुभूति का थाह लगाना तो अभिव्यक्ति की किसी भी सामर्थ्य से परे होगी।

पुरूष और स्त्री यद्यपि समाज–जीवन रूपी गाड़ी के दो पहिये कहे गये हैं और यह भी कहा गया है कि उनमें से यदि एक भी पहिया टूट या घुन जाए तो गाड़ी का चलना संभव नहीं रह पाता। किन्तु देखा यह गया है कि समाज की इस गाड़ी का स्त्री–रूप एक पहिया तो आदिम युग से ही दयनीय स्थिति में विद्यमान है। पुरूष की अपेक्षा शरीर से दुर्बल तो स्त्री को प्रकृति ने ही पैदा किया है, ऊपर से मानव ने भी इस स्थिति पर रहम खाने के बजाय जी भरकर उसका फायदा ही उठाया है उसकी सुरक्षा को लेकर चाहें जितना भी पुरूष दावा करे, आचार–संहितायें निर्मित करने की कोशिश करें, मौका मिलने पर वह स्वयं उसके समीप पहुँचना चाहेगा या यों कहें कि न्याय–अन्याय कैसे भी उसे प्राप्त करके ही दम लेगा तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

अपनी इस सामाजिक विसंगति से कमोवेश हर स्त्री परिचित होगी किन्तु जानकर भी अनजान बनी हुई वह जीवन में आये दिन आने वाली इन आप–बीती कठिनाइयों से जूझती–निपटती रही है और रहेगी भी, ऐसी सम्भावनाओं से इन्कार नहीं किया जा सकता। स्त्री की आप–बीती कठिनाइयों के अनेक चित्र लोक गीतों में भरे पड़े है। भोजपुरी अंचल की एक देहातन स्त्री जाना कहीं चाहती थी किन्तु रास्ता भूल जाने के कारण पहुँच कहीं जाती है। वहाँ ऐसे लोगों से उसका पाला पड़ता है जिसकी पहले से उसको कोई सम्भावना नहीं थी उसके मन में असुरक्षा को लेकर एक साथ अनेक समस्याएँ आ खड़ी होती है, जिसका द्योतन करती उस स्त्री की मनोदषा देखिये।

"चलत–चलत चलि गइली न हो।
'जाहावाँ केहू न हामार।
"ओही तरे घूरे सभें हामारा के हो,
"जेइसे लरिया, हुँड़ार।।

"अर्थात रास्ता भूलकर चलती हुई मैं एक ऐसी जगह पहुँच गई जहाँ अपना कहने को कोई भी नहीं दिखा। सबके सब मुझे उस तरह घूरने लगे जैसे घनघोर जंगल में अचानक किसी व्यक्ति को सम्मुख पाकर लकड़बग्हे अथवा भेड़िये घूरने लगते हैं।

एक अन्य युवती किसी त्यौहार पर अपने मायके गई हुई थी। त्यौहार के बाद सुबह ही सुबह वह मायके से ससुराल के लिये निकल पड़ती है किन्तु ससुराल पहुँचने में उसे शाम हो जाती है। उसे भय है कि ससुराल वाले उससे विलम्ब का कारण पूछेगें। और सहज ही मुझ पर विष्वास नहीं करेगें। घर पहुँचने पर होता भी अन्ततः वही है, जिसके मारे वह पहले ही से भयभीत थी। उसके पति ने उसे सौगन्ध दिलाया फिर विलम्ब का कारण पूछा। जरा उस युवती की आप बीती सुनिये

"नैहर से आवत रहली।
ससुरा हो गइले अबेर
राम मोसे किरिया लिहले"।।

एक अन्य गीत में एक स्त्री प्रसव पीड़ा से छटपटा रही है। उसकी छटपटाहट से उसका पति भी परेशान है। दायी उसे देखकर अभी–अभी गई है। प्रसव में एकाध दिन अभी और लग सकते हैं। औशधियों के प्रभाव से पीड़ा कम होने पर पति को वह अपने पास बुलाकर बिठा लेती है और अत्यंत गम्भीर होकर उससे पूछती है। कि हे प्राणेश्वर– "जब हमने और तुमने इस गर्भ की गठरी को दोनो की राजी–बाजी से बॉधा था तो खोलते समय इसके बोझ को अकेले हमें ही क्यों ढ़ोना चाहिये। इस गठरी के बोझ से तो मैं मरी जाती हूँ और एक साझीदार तुम हो, जो स्वतंत्र होकर इधर–उधर घूम रहे हो"।

"मिलि–जुली बन्हली गठरिया"
खोले की बेरिया अकसर हों।

पति आखों में ऑसू भरे हुये उसे उत्तर देता है :–

"विधना के बान्हलि गठरिया
ना दोसर ढ़ोबइया बा हो,
धनिया। पीठिया बा हाजिर हामार
चलहु किन ओहि पर हो।।

"अर्थात– हे धनियां। विधाता द्वारा बॉधी गई यह गठरी जिसके सिर पर रख दी गई है उसको ढ़ोने वाला सिर्फ वही है दुनिया में कोई दूसरा नहीं। इसी लिए मैं तुमसे हाथ जोड़कर निवेदन करता हूँ कि हमारी पीठ तुम्हारे लिये सदैव हाजिर है –जब तक भगवान तुमको इस गठरी के बोझ से मुक्त नहीं कर देता तब तक तुम उस पर ही चल फिर सकती हो।"

पुत्र जन्मोत्सव पर अन्न–धन, हाथी–घोड़े, रूपये–पैसे, वस्त्राभूषण लुटाने की प्रवृत्ति हर जनपद के लोक गीतों में समान रूप से देखने को मिलती है। धनी

हो या निर्धन सभी इस अवसर पर अपनी सार्मथ्य के मुताबिक अन्न–धन एवं मिष्ठान आदि का वितरण करता–कराता है। भिण्ड जनपद के लोक गीतों में पुत्र जन्मोत्सव की खुशी में दायी को नेग दिये जाने की परम्परा है किन्तु दाइयाँ प्रचुर मात्रा में नेग पाकर भी ठन–गन दिखातीं हैं। हर–जनपदीय गीतों में दाइयाँ (धनरिनों) के ठन–गन के विविध रंग देखने को मिलते हैं। सबसे पहले भिण्ड जनपद का एक गीत प्रस्तुत है –

"कैसी मिजाजिन दायी, राम के नरबा न छीने।
राजा दषरथ ने हाथी सौपि दये,
सोऊ न ले रइ दायी, राम के नरबा न छीने।।"

इसी तरह का एक भोजपुरी नार–छिनाई गीत दृष्टव्य है –

"बैरिन भइली धगरिनियाँ, कइसहूँ न आबे ली हो।
ललना,फाटति आबे करिहइया, मरन जोग लागे ला हो।
धर्म के ससुरू बढइति, धगरिन बोलइती न हो,
ससुरू। देइ देती अन–धन–सोनावाँ, त धगरिनि आइजइति हो।।"

छठी के गीतों में हरिणा का षिकार करने, उसका मॉस रॉघने तथा उसकी चमड़ी से ढ़पली मढ़ाने का प्रसंग प्रायः सभी जनपदीय संस्कार गीतों में समान रूप से देखने को मिल जाता है। इन गीतों में स्थान एवं परिस्थति भेद से राजा एवं उसके परिवार–जनों के नाम में अन्तर अवश्य प्राप्त होता है किन्तु वर्ण्य विषय एवं गीत का संवेदन प्रायः एक सा ही दृष्टिगोचर होता है। भिण्ड जनपद में गाये जाने वाला हिरना–गीत तथा अवधी एवं भोजपुरी जनपद के हिरना गीतों में कितना साम्य है आप स्वयं देख सकते हैं –

"न्हाइ–धोइ रानी रूकुमिनि भीतर आयीं,
अरी हाँ मेरी रनियाँ कवन भोजनवाँ की साध।।
सकल चीज मेरे घर में धरी है, अरे हाँ मेरे राजा,
अकिल हिरनवाँ की साध।"

रानी रूकुमिनि की साध (इच्छा) जान कर राजा हरिणा के शिकार के लिये प्रस्थान करता है। उधर हिरणी अपने प्रिय हिरण को इस घटना से सचते करती है और आज के दिन जंगल में चरने जाने से रोकती है किन्तु हिरन उसकी बात न मानकर नित्य की तरह चरने के लिये बाहर जाता है और शिकारियों का शिकार हो जाता है। इसके बाद का प्रसंग गीत की पंक्तियों में देखिये –

"मारि मूर राज धर को सिधारे, हिरनी ने लये पछियाय।
मॉस–मॉस राजा तुम लये जइयो, खलरी हमें दये जाओ।
मॉस तो मेरी हिरनी चढत रसोइया, खलरी की ढ़पली मढ़ाउ।
रंग महल भीतर ढ़पली बजतु है, शब्द सुने सुख होय।
ढ़पली की धुनि पर विलखे हिरनिया, तिरिया जनम नहि होय।।"

गीत का संदेश स्पष्ट है। गीत में अन्योक्ति के माध्यम से हिरणी के बहाने एक असहाय स्त्री की मनोदशा चित्रित की गई है जिसके माध्यम से यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार एक स्वार्थी– क्रूर राजा द्वारा अपनी पत्नी की इच्छा पूरी करने हेतु हिरण का शिकार कर लिया जाता है और मॉस तो उनकी रसोई में पकता ही है हरिणी के मॉगने और हा–हा खाने पर उस हिरण की खाल भी उसे नहीं दी जाती। उससे ढ़पली मढ़ाया जाता है जिससे उनकी विलास–वासनाएँ संतृप्त होती है उन्हे उस दुखियारी हिरनी की आप–बीती से क्या लेना–देना। इस गीत में एक सबल द्वारा निर्बल के प्रति किये गये क्रूर कर्म को दर्षाया गया है।

यही गीत न्यूनाधिक परिवर्तन के साथ अवधी और भोजपुरी संकार गीतों में भी मिलता है किन्तु छठी पूजन का उक्त अनुश्ठान रानी रूकुमिनी के घर न होकर राजा दशरथ के घर सम्पन्न होता है। घटना में और कोई भी अंतर दृश्टिगोचर नहीं होता। पंक्तियॉ देखिए –

अवधि का गीत –

"छापक पेड़ छिउलिया त पतवन गहवर,
राम, तेहि तर ठाढ़ि, हिरिनिया त मन अति अनमनि।
मचिए बैठी कोसिला रानी,हरिनी अरज करइ,
रानी मॉसवा त झिंहे करहिया, खलरिया हमें देतेउ।
पेड़वा से टंगउ खलरिया त हेरि के देखतिऊं,
रानी देखि–देखि मन समझइतिऊँ, जनु हिरना जियतऊँ।
जाऊ हिरनि घर अपने खलरिया ना देवहूँ,
हरिनी खलरी के खॅजड़ी मढ़इबउ त राम मोर खेलिहइ।
जब–जब बाजे खॅजड़िया, सबद सुनि अनकइ,
हरिनी ठाढ़ि ढेकुलिया के नीचे हिरन के विसूरइ।। 2

भिण्ड जनपद के हिरना गीत की भॉति इस गीत में भी एक सघः विधवा हुई नारी की असीम दुखों की ओर संकेत किया गया है जिसमें कौसिल्या नाम की एक निर्दयी–ठकुराइन द्वारा एक एक निरीह हरिण को इसलिये मरवाया जाता है

कि उसकी खलरी से खजड़ी मढ़वाई जाएगी जिससे उसका दुगुना दाम मिलेगा। किन्तु उन्हे इस बात की कोई परवाह नहीं है कि उनके इस कृत्य से उनके प्रजाजनों पर क्या बीतेगी ? इस गीत का व्यंग्य यह है कि एक शासक और शासित का यह कैसा संबंध है ? दोनो के हित इतने परस्पर विरोधी क्यों हैं ? इस तरह का गीत भोजपुरी में भी प्राप्त है किन्तु स्थानाभाव के कारण उसकी प्रस्तुति सम्भव नही है।

धन की पूजा हमारे यहॉ अत्यंत प्राचीन है। यहॉ सदा से धनी व्यक्ति पूज्य और निर्धन तिरस्कार का पात्र रहा है। संस्कार गीतों में भी इस भाव का द्योतन दृश्ट है। एक घटना प्रस्तुत है। सुखिया और दुखिया दो सगी बहने थीं। दोनो भतीजे के जन्म पर अपने–अपने सामर्थ्य के अनुसार बधावा लेकर भाई के घर पॅहुची। सुखिया अपने साथ मूल्यवान वस्तुऍ और दुखिया मूल्यहीन वस्तुऍ लेकर आयी थीं, यही कारण था कि सुखिया को उन्होने आदर–सम्मान पूर्वक रखा और थाल भर मोती देकर उसे विदा किया और दुखिया को अनादर के साथ सेर भर कोदो देकर भाई ने जाने को कह दिया।

गीत दृष्टव्य है –

"दोनो बहने बधाई लेके आई हओ राजा वीरन के।
सुखिया ले आई सोने को खड्डुवा, दुखिया दूब का पोड़ा,
सुखिया को डारे दरी बिछौना, दुखियाा को टूटी चटइया,
सुखिया को कद्दए ताती–ताती पुरियां, दुखिया को रूखी–सुखी टुकड़ा।
सुखिया को दीन्हों थार भर मोती, दुखिया को सेर भर कोदो।

यह गीत अवधि एवं भोजपुरी में भी बिना किसी फेर बदल के मिल जाता है। गीत पंक्तियों की माशिक रचना में थोड़ा–बहुत अंतर अवश्य आया है किन्तु वास्तव में यदि देख जय तो संदेश तीनों ही जनपदीय गीतों मे एक ही है। अंत में यह दिखाया गया है कि भाई ने सुखिया जानकर विदाई में जिसे मोती दिया था वह गॉव के बाहर निकलते ही कोयला हो गया और जिसको सेर भर कोदो दिया था वह मोती हो गया।

"गॅउवॉ की गोइड़ा पहुॅंचहू ना पवली हो
भइल अजब चमत्कार जी।
मोतिया के फाड़ उनकर कोइला भ गइल
कोदो भइल रतनार जी"।।

यों तो हर संस्कार गीत थोड़ा बहुत भाषिक भेद होते हुये भी संवेदना एंव भाव के स्तर पर पर्याप्त साम्य लिये हुये दृष्टिगत होते है किन्तु एक आलेख में सभी की प्रस्तुति संभव नहीं हो सकती। इसीलिये कुछ चुने हुये अवसरों एवं अनुष्ठानों के गीतों को ही आलोच्य आलेख में प्रस्तुत किया जा सका है। अब अंत में एक कन्यादान एवं विदाई गीत की प्रस्तुति के पष्चात ही इस आलेख को समाप्त करना चाहूँगी।

विवाह संस्कार के गीतो में कन्यादान के गीतों का अपना एक अलग ही महत्व है। कन्यादान अन्न, गौ, धरती, सोना–चॉदी आदि धन–दान से भी श्रेष्ठ माना जाता है। पिता अपनी कन्या को सदा के लिये एक सुयोग्य वर को दान कर देता है। यह एक ऐसा भावमय अवसर है जिसके गीत दर्शक, पाठक एवं श्रोता सभी को करूण रस से भर देता है। एक भोजपुरी कन्यादान का अत्यंत भावभय गीत प्रस्तुत है –

"हमरी दुलारी हो बेटी, ऑखि के री पुतरिया।
दिनवॉ हरेलू हो बेटी, भूखिया रे पियसिया,
रतिया हरेलू हो बेटी, चयन सुख रे निनिया।।"

निर्जला व्रत रखे हुये मन, वचन और कर्म से कन्यादान के लिये प्रस्तुत पिता की स्थिति चाहे किसी भी अंचल की क्यों न हो, वास्तव में किसी के भी मन को छू लेती है।

पुत्री की विदाई का समय कितना कारूणिक होता है कोई सहष्दयी ही इसका अनुमान लगा सकता है। इन गीतो में कन्या के माता–पिता, भाई–भौजाई तो व्याकुल होकर रोते ही हैं, समूचा, वातावरण सुबुकने लगता है। विदाई गीतों में यदि देखा जाए तो करूणा का सागर हिलोरे लेता दृष्टिगोचर होता है। भिण्ड जनपद का एक विदाई गीत देखिए –

"आये नीम की है शीतल छॅइयॉ
तो माय कलेवा लिए ठाढ़ी,
को मेरी बिटिया को उबटन उबटी, को रे लगावे तेल रे।
को मेरी बिटिया को सुचयी कलेवा जा बिनु जइहे कुम्हिलाइरे।।

इसी प्रकार इस अवधी के विदाई गीत से भला कौन परिचित नहीं होगा। यह ऐसा मर्म स्पर्शी गीत है जिसे सुनकर बज्रह्रदयी व्यक्ति भी द्रवीभूत हो जाता है

अरे सुनु बाबुल मोरे, काहे को दीन्हों विदेश
भइया को दीन्हों बाबुल ऊँची अटरिया हमको दिया परदेश

हम तो बाबुल तोरे खेत की चिरैया, चार दिन ह्म चारी ह्वा।।

गीतों के उपर्युक्त तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से मैन भिण्ड जनपद के संस्कार गीतो को अन्य जनपदीय संस्कार गीतो के परिपेक्ष्य में रखकर सिर्फ यह अन्वेषित करने का यल किय है कि मानवीय भावों की तरह उन भावों के प्रतिनिधि ये गीत भी देश के किसी भी अंचल में एक दूसरे से भिन्न नहीं है। उनकी भाषा अथवा कथनी में भले ही भेद हो परन्तु इनके कथ्य अथवा प्रतिपाध में कहीं भी अन्तर नहीं है। इतिअलम्।

सदंर्भ ग्रंथ

1 ओही तरे–उसी तरह 2. घूर–ताके (देखें) 3. भोजपुरी गीत संकल्न से

4. अबेर =विलम्ब 5. राम = पति का प्रतीक है 6. किरिया = सौगन्ध

(भोजपुरी का लोक साहित्य – डॉ. कृष्णा देव उपाध्याय, पृष्ठ–163)1. भोजपुरी लोक साहित्य संकलन से

2. भिण्ड जनपद के संस्कार गीतः एक अध्ययन शोध प्रबंध (अप्रकाशित) डॉ. अनीता जैन सन् 1989 पृष्ठ 456

3. भोजपुरी लोकगीता संकलन से 1.भिण्ड जनपद के संस्कार गीत, संकलन क्रमांक–46

2. अवधी का लोक साहित्य– डॉ0 सरोजनी रोहतगी– पृष्ठ–164–65

गीत संकलन– डॉ. अनीता जैन क्रमांक 98

1. भोजपुरी लोक गीत संग्रह– डॉ. कृष्णा देव उपाध्याय

1. भोजपुरी का लोक साहित्य– डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय

2. भिण्ड जनपद के संस्कार गीत–संकलन–से